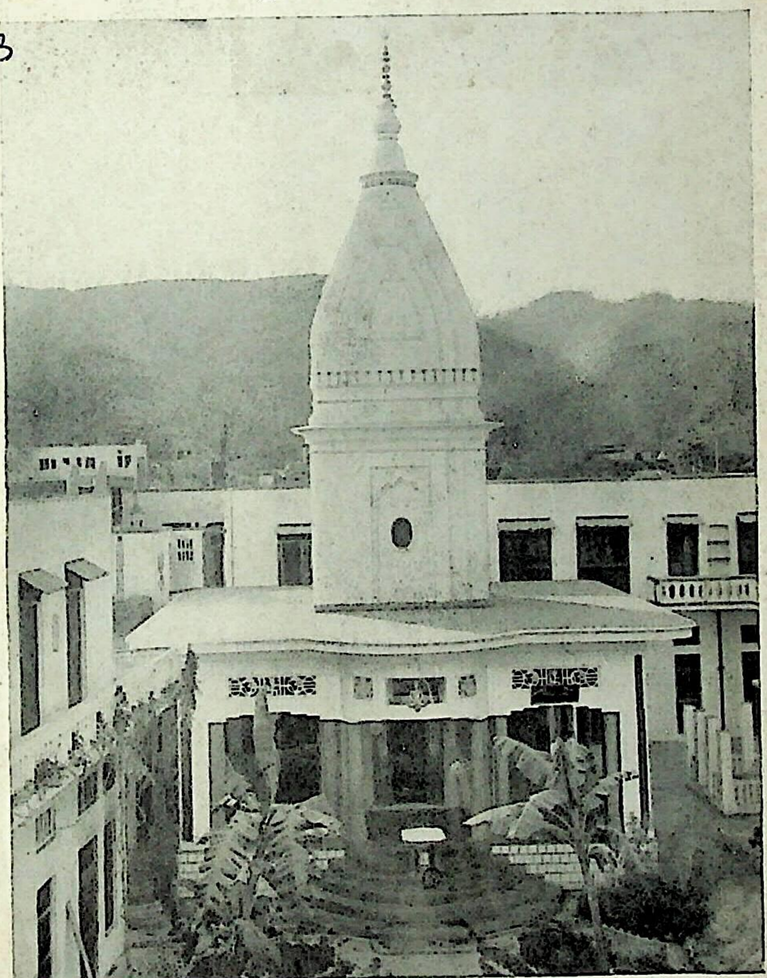
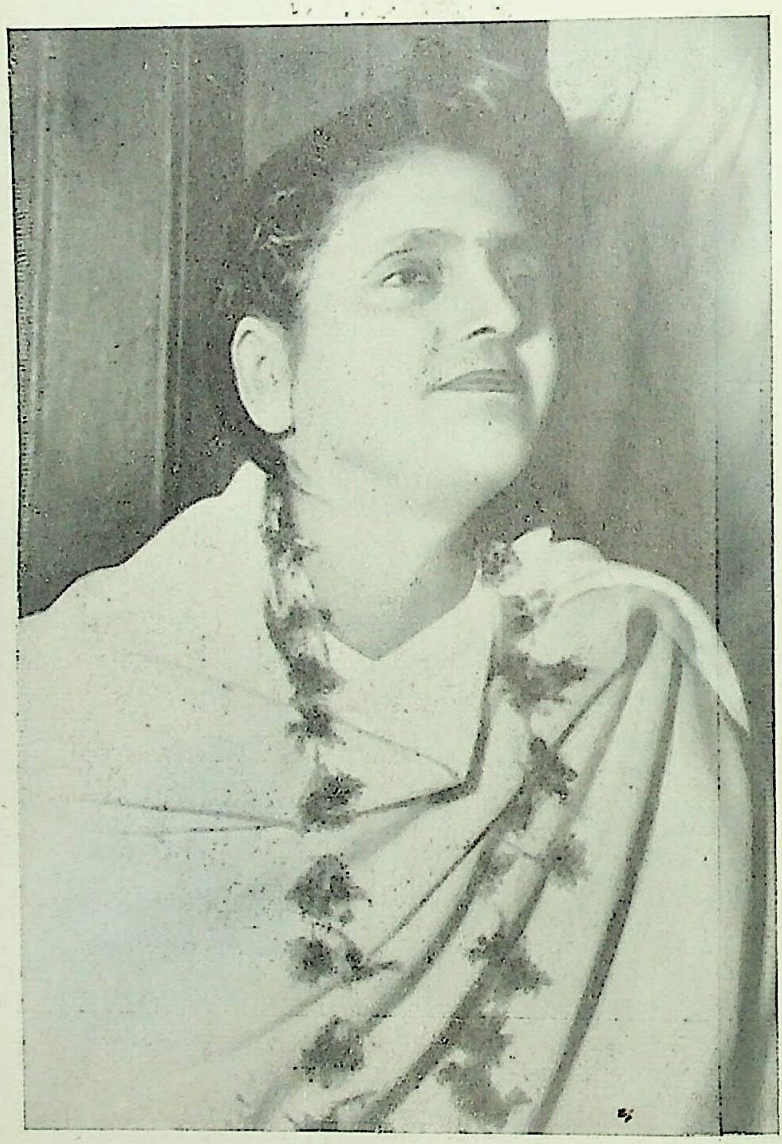
पुण्य-स्मृति

33



दिलीपेश्वर महादेव

SHIVA TEMPLE AT BAGHAT HOUSE, HARDWAR



पुण्य-स्मृति

श्री श्री माँ आनन्दमयी की ५८वीं जन्मतिथि के अवसर पर

श्रीमातृपदप्रशस्तिः

महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसाददीक्षितः

आनन्दमातुः पदवर्णनानुग रसं समास्वादितुमेव तत्परा।
स्वादाच्च भक्त्याऽप्यविमुक्ततत्पदा मुदाऽलसा सा रसना सदास्तु मे ॥१॥

शशी यतस्ते नखराग्रशोभां दधाति तेनैव जनेन नूनम्।
प्रणम्यते स्वल्पविकाशनोऽपि शिशुर्लघीयान् प्रतिपद्गतोऽपि ॥२॥

यद्वाऽपि ते पादनखभ्रमेण नमन्ति नूनं सुधियो निशेशम्।
न चेत्कलङ्की गतसाधुशोभः सद्भिः कथं स्यात्सुबुधैश्च वन्द्यः ॥३॥

पूज्यातिपूज्यस्य महाप्रभस्य यल्लोकबन्धोः सुहृदैव वैरम्।
करोति तत्पापमलीमसोऽसौ क्षीणो भवंस्ते पदयोः प्रपन्नः ॥४॥

भस्मीकृते मित्रवरे स्मरेऽयं पराङ्मुखीभूय भवान्नु मीतः।
प्राप्तस्त्वदङ्घ्रौ वसतीति युक्तं खिन्नः शरण्यं शरणीकरोति ॥५॥

तमो निपीय प्रचुरं भ्रमन्निव च्छटाः सदा श्वेततमाः समुद्गिरन्।
रुग्णः समुद्भूतविवेकचेतनः श्यामीभवंस्ते निपपात पादयोः ॥६॥

रामामुखैः साम्यनिरीक्षणाय तुलैककोटौ निहितो विधात्रा।
क्षिप्तोलघुत्वाद्गगने निशेशः क्षीणः शुचा त्वत्पदयोः प्रपन्नः ॥७॥

पदोः प्रपन्नो जनताभिवन्द्यः स्वौपम्यवार्त्तां प्रतिपिध्य वाढम् ।
नारीमुखाणां किमु भर्त्सनाय विधाय सुप्तो गलहस्तमेषः ॥८॥
इन्दुं विलोक्य नयते मुखमन्यथा यद्वैरं दधाति निभृतं रविदत्तहस्तः ।
तस्यैव पाकमभिगच्छति पद्मवर्गो लक्ष्मीकरानुगतितोऽनुनयत्यथैनम् ॥९॥
तारापतिश्चरणोस्तवसन्निधौ यद्वासं विधाय सततं स्मरति स्थिरस्त्वाम् ।
तस्मात्तमः समभिभूय गतः सुषुप्तिं कः सेवकं न नयते दयया स्वसद्म ॥१०॥
प्रत्येकजन्मन्यपराऽपरैव नटक्रियाऽदर्शि मया तवाग्रे ।
अथ प्रसन्नाऽसि वरः प्रदेयो न वा प्रसन्नासि निवर्त्तयस्व ॥११॥

अष्टपञ्चाशत्तमेऽस्मिन्नब्दे लोकैकमङ्गले ।
आनन्दमय्याः श्रीमातुर्भवन्तु सुखिनो जनाः ॥१२॥

श्री श्री माँ

संसार में पूर्ण सत्ता का आविर्भाव सभी के कल्याण के लिए होता है। माँ के सम्पर्क से बहुत लोगों का कल्याण हुआ है। अनेकों के जीवन में असाधारण परिवर्तन हुए हैं। कितने ही दुःखियों के मन को शाश्वत शान्ति प्राप्त हुई है। कितने ही विभ्रान्त संसार-पथिकों को सत्य प्रकाश की प्राप्ति हुई है। इसी प्रकार कितने ही लोगों को रोग, शोक और दैन्य से मुक्ति मिली है। माँ की सान्निधि में उनके अतिसूक्ष्म दिव्य प्रभाव से मन पूर्णतः प्रसन्न हो जाता है, कुसंस्कार हट जाते हैं, विचारों में शुद्धता और सुसंस्कृता के साथ दिव्य भाव का संचार होता है। मां जहां भी जाती हैं वहां आनन्द का पारावार नहीं रहता। मां के याथार्थ्य के सम्बन्ध में ठीक ठीक कहना कठिन ही नहीं असंभव है। फिर भी इतना तो कहने का साहस होता ही है कि हमारी मां सर्वविध संम्पूर्णताओं से परिपूर्ण हैं और विविध प्रकार के एकत्रित जनों को अपनी कृपादृष्टि से शान्ति प्रदान करती हैं। ऐसी अनुपम सौम्यता, मधुरता, निस्पृहता, निरभिमानिता और साम्यावस्था का प्रकाश जिन व्यक्तियों को प्राप्त हुआ है, वह किसी पिछले बड़े ही सुकृत का फल है, ऐसा प्रतीत होता है। फिर भी कईएक व्यक्ति प्रश्न कर बैठते हैं कि मां क्या हैं ? इसका ठीक-ठीक उत्तर देना तो बहुत ही कठिन है पर मन्दबुद्धि के अनुसार जो कुछ कह सकते हैं वह यही है कि आप मां के सम्पर्क में आने का

प्रयत्न करें आपको स्वयं अपने प्रश्न का उत्तर समय-समय पर मिलता रहेगा।

अज्ञानावृत चर्मचक्षुओं से संकलित कतिपय पंक्तियां नीचे उद्धृत की जा रही हैं उनसे यदि मातृ-सम्बन्ध में किसी को कुछ अभिज्ञता प्राप्त हुई तो संकलन कर्ता अपना अहोभाग्य समझेगा।

माँ के जीवन की एक झाँकी

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

श्री श्री मां आनन्दमयी का आविर्भाव वैशाख सौर १९ संवत १९५३ वि० (३० अप्रैल १८९६ ई०) बृहस्पति वार रात्रिशेष ३ बजे खेउड़ा ग्राम (जिला त्रिपुरा) में हुआ था। उनके पिता का नाम विपिन-विहारी भट्टाचार्य और माता का नाम मोक्षदासुन्दरी था। दोनों ही परम भक्त, सदाचार और पवित्रता की प्रतिमूर्ति थे। उनकी वंश-मर्यादा भी अत्यन्त सम्मानित थी। उनके पूर्वजों में दो एक पुरुषों को सिद्धियां प्राप्त हुई थीं और उसी वंश की किसी एक देवी ने सती होकर उक्त वंश की महत्ता को विकसित किया था। विपिनविहारीजी विद्याकूट के काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे। विद्याकूट के काश्यपों का समाज में अत्यधिक समादर है। विद्याकूट त्रिपुरा जिला का एक ग्राम है। खेओड़ा ग्राम में विपिनविहारीजी का मातुलालय था।

माँ अपने मातापिता की दूसरी सन्तान हैं। माँ के पूर्व उनकी एक बालिका हुई थी, किन्तु माँ के जन्म के पूर्व अल्पकाल में ही उसने अपनी जीवनलीला समाप्त कर ली। माँ के अनन्तर लगातार

तीन भाई हुए। वे भी अधिक दिन नहीं टिके। कुछ ही दिन धरा-धाम में रह कर उन्होंने भी दूसरे लोक को प्रस्थान किया। उक्त तीन भाइयों के अनन्तर दो बहिनें—सुरबाला और हेमलता—हुईं एवं सबके अनन्तर एक भाई—माखन—उत्पन्न हुए।

माँ के पहले एक बालिका जाती रही थी, इसलिए मातामहीजी माँ के आविर्भाव के दूसरे ही दिन माँ को तुलसी के तले लिटा लाईं। इसी प्रकार अठारह महीने तक नित्य ही तुलसी के तले लिटा लाती थीं। माँ के आविर्भाव के समय मातामहीजी को कुछ भी क्लेश नहीं हुआ। थोड़ी सी प्रसववेदना के अनन्तर माँ धरातल पर अवतीर्ण हुईं। मां साधारण बच्चों के समान रोईं नहीं। प्रशान्त और नीरव भाव से पड़ी रहीं। उस समय भी माँ में आज के तुल्य ही पूर्ण ज्ञान और पूर्ण स्वातन्त्र्य शक्ति विराजमान थी। जैसे साधारण लोगों को जन्मकाल की घटनाओं का स्मरण नहीं रहता ऐसी बात मां में नहीं रही। इसीलिए माँ कहती हैं, "जन्म-समय में मैं रोती क्यों ? मैं झरोखे के छेद से आम का पेड़ देख रही थी।" मां के जन्म के तेरहवें दिन मातामही के मझियां श्वसुर मां को देखने आये थे। इस बात का मां ने अपने बचपन में ही माता को स्मरण कराया था। इस प्रकार के और भी अनेकों उदाहरण मां की जीवनी में दृष्टिगोचर होते हैं। नामकरण संस्कार के अनन्तर मां का निर्मला नाम पड़ा।

मां का बाल्यकाल बहुत ही सीधे सादे ग्रामीण वातावरण में व्यतीत हुआ था। शिक्षा-दीक्षा का भी कोई प्रबन्ध नहीं रहा। मां की

असाधारणता बचपन में ही प्रस्फुटित हो चुकी थी। वे बाल्यावस्था से ही हँसमुख थीं। उनका आकर्षक माधुर्य और सौन्दर्य अपरिचितों के हृदय को भी आकृष्ट कर लेता था। इस कारण सभी लोगों का मां के प्रति अत्यन्त स्नेह था। मुसलमान भी उन्हें गोद में लेकर खेलाने के लिए लालायित रहते। यद्यपि माँ का आविर्भाव नितान्त निर्धन घर में हुआ था तो भी मातापिता के असीम स्नेह के कारण मां को कभी किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं हुआ।

माँ के जन्म के पूर्व की एक घटना का यहां उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। मां के जन्म के पूर्व ही मातामहजी एक नौकरी के सिलसिले में घर से बाहर गये, तीन वर्ष तक अज्ञातवास की स्थिति में रहे। इस बीच साधु सन्तों के सम्पर्क में ही उनका अधिकांश समय कटता तथा कीर्तन और सत्संग की ओर ही उनकी विशेष अभिरुचि रहती थी। एक पड़ौसी की सहायता से तीन वर्ष के बाद वे घर लौटे। उसके अनन्तर ही माँ गर्भ में आईं।

सुना जाता है इसी बीच में मातामहजी की माताजी कसबा की विख्यात कालीजी के मन्दिर में 'विपिन के पुत्र हो' यह प्रार्थना करने गईं और कह बैठीं 'विपिन के कन्या हो।' वृद्धा की इस प्रार्थना के कुछ ही दिन बाद मां का आविर्भाव हुआ।

माँ बाल्यावस्था में नाना प्रकार के देवी देवताओं का आना जाना देखती थीं, इसलिए भोजन करते या कहीं आते जाते अन्यमनस्क हो उठती थीं। इस कारण कभी कभी उन्हें अपनी माताजी की मधुर फटकार भी सुननी पड़ती थी। कहीं दूर पर

कीर्तन होने पर माँ का शरीर भावाविष्ट हो उठता था। माँ भावावस्था को गुप्त रखना चाहती थीं, इस कारण उस समय उसपर किसी का लक्ष्य नहीं पहुँचता था। एक दिन, जब कि मां लगभग पौने तीन वर्ष की होंगी, मातामहीजी मां को गोद में लेकर एक पड़ौसी के घर कीर्तन सुनने गईं। वहां कीर्तन सुनने से मां भावाविष्ट हो गईं। उन्होंने यह ऊँघ रही है समझ कर माँ से कहा, "सोती क्यों है, कीर्तन सुन।" मातामहीजी को रात्रि में माँ की भावावस्था का पता नहीं चला।

माँ का स्वभाव निसर्गतः सरल और मधुर था, इसलिये बाल्यावस्था में सभी लोग मां को बड़ी सीधी, भोली कहते थे; मातामहीजी तो अक्सर ही कहतीं कि यह तो बड़ी ही सीधी है, इसे कुछ भी सुध-बुध नहीं है। इस पर मां को विनोद सूझा; एक दिन मां तालाब से एक घड़ा जल भर बगल में दबा कर टेढ़ी बन कर आईं और बोलीं तुम लोग मुझे सीधी कहते हो लो मैं टेढ़ी हो गई हूँ। मां की इस युक्ति और उक्ति पर सभी को महान् आश्चर्य हुआ।

मां का पढ़ना लिखना बहुत ही कम हुआ था, एक प्रकार से नहीं के बराबर। किन्तु जो कुछ हुआ उसमें तनिक भी विलम्ब नहीं लगा। एक दिन में अ, आ आदि सब स्वर वर्ण, एक दिन में क, ख, ग आदि सब व्यञ्जन वर्ण और एक दिन में सब बारह खड़ियां मां ने सीख लीं। इस कारण मास्टर मां की बुद्धिमत्ता पर बहुत प्रसन्न हुए। घर पर परिश्रम न कर सकने पर भी स्कूल में अपने समकक्ष साथियों की अपेक्षा सुन्दर रीति से पढ़ना लिखना हो जाता था, इसलिए भी स्कूल के मास्टर मां के प्रति बहुत प्रसन्न रहते थे और स्कूल में

वुद्धिमान बच्चों के रहने से उसकी प्रतिष्ठा होगी यह सोच कर मां स्कूल में रहें और आगे की श्रेणियों तक पढ़ें ऐसा हृदय से चाहते थे। किन्तु विविध प्रकार की असुविधाओं के कारण मां का पढ़ना चालू न रह सका।

बारह वर्ष दस मास की अवस्था में माघ सौर २५ संवत् १९६५ में विक्रमपुर के निकट आठपाड़ा गाँव (जिला ढाका) में श्री जगवन्धु चक्रवर्ती के सुपुत्र रमणीमोहनजी के साथ श्री श्री आनन्दमयी का विवाह सम्पन्न हुआ। रमणीमोहन बड़े ही साधु प्रकृति के पुरुष थे। आगे चल कर भक्तमण्डली में उनकी भोलानाथजी के नाम से प्रसिद्धि हुई। इसलिए हमने भी भोलानाथ के नाम से ही उनका उल्लेख किया है। विवाह के समय भोलानाथजी की माता न थीं, किन्तु पिता जीवित थे। विवाह के दो वर्ष बाद पिताजी का भी देहावसान हो गया। उनके दो बड़े भाई और दो ही छोटे भाई थे। पांच बहनें थीं।

विवाह के समय भोलानाथजी पुलिस विभाग में नौकरी करते थे, किन्तु विवाह के कुछ ही दिनों के बाद नौकरी छूट गई। उसके अनन्तर कई वर्षों तक वे निरालम्ब रहे। मां विवाह के पश्चात् चार वर्ष तक अपने जेठजी के निकट रहीं। वे ढाका-जगन्नाथगञ्ज लाइन मे श्रीपुर आदि स्थानों में स्टेशन मास्टर थे।

जेठजी के समीप रहते समय मां सम्पूर्ण गृहकृत्य अपने हाथ से ही करतीं थीं। यथाशक्ति जेठजी की सेवा-शुश्रूषा भी करती थीं। जेठजी का भी मां की सौम्य प्रकृति के कारण उन पर अत्यधिक स्नेह था। मां उस समय अतिलजीली कुलवधू थीं। कुलवधू के सम्पूर्ण नियमों और आचरणों का पालन करती थीं। उस समय भी माँ की

अन्तर्मुखता सदा अनुस्यूत रहती थी। यदा कदा भावावस्था का उदय भी हो जाता था, किन्तु सर्वसाधारण में वह प्रकट न थीं, इसलिए लोग उसे समझ नहीं पाते थे। कभी-कभी रसोई बनाते-बनाते ऐसी अवस्था प्रकट हो जाती थी, लोग समझते थे कि बहू बहुत सोनेवाली है। कभी कभी भात बिखर जाता तो जेठानीजी बिगड़ने लगतीं। उस समय मां अत्यन्त लज्जान्वित हो कर उठ बैठतीं और पुनः सब ठीक कर रसोई बनाती थीं। माँ की प्रकृति अत्यन्त शान्त थी इसलिए सभी माँ से सहानुभूति रखते थे।

जेठजी की मृत्यु के बाद माँ अपनी जेठानी आदि के साथ अपने गाँव आठपाड़ा आईं। छः मास वहां रह कर विद्याकूट अपने पितृगृह चली गईं। मां के आठपाड़ा रहते समय ही भोलानाथजी की अष्टग्राम में नवाब के स्टेट के अन्तर्गत सर्वे विभाग में नौकरी लग गई। विद्याकूट छः मास रहने के बाद मां अष्टग्राम आईं। एक वर्ष चार मास वहां रहीं।

अष्टग्राम में कतिपय स्त्रियाँ मां के माधुर्य और हँसमुख स्वभाव को देख कर माँ को खुशी की माँ कहती थीं। माँ के सर्व प्रथम भक्त हरकुमार ने भी माँ के सम्बन्ध में इसी समय भविष्यवाणी की थी। वह माँ का परम भक्त था। उस समय भी उसका माँ के प्रति पूर्ण मातृभाव था। माँ का प्रसाद पाने के लिए वह लालायित रहता था। प्रसाद देना तो दूर रहा लज्जाशीला माँ को उससे भाषण करने में भी संकोच होता था। भोलानाथजी के आग्रह पर संकोच कुछ निवृत्त हुआ और हरकुमार का मनोरथ सिद्ध हुआ। भक्त हरकुमार माँ का

कोई कष्ट नहीं देख सकता था। माँ को किसी प्रकार का कष्ट न हो इस ओर उसका पूर्ण लक्ष्य रहता था। एक दिन उसने माँ को सम्बोधित करते कहा था, "माँ, आज तुमसे माँ कहनेवाला अकेला मैं ही हूँ, लेकिन एक दिन आवेगा, सारा विश्व तुमको मां कहेगा।" हरकुमार की यह वाणी अक्षरशः सत्य निकली।

भक्त हरकुमार के प्रयत्न से ही माँ के लिपे पुते स्वच्छ सुरुचिपूर्ण तुलसी के तले कीर्तन की व्यवस्था हुई थी और यदा कदा वहाँ पर कीर्तन होता था। अष्टग्राम में गगनराय के कीर्तन के समय सर्वप्रथम माँ के भाव के आविर्भाव से उत्पन्न होनेवाले विकारादि बाहर जनता में अभिव्यक्त हुए थे। पहले पहल जब ये भावावस्थाएँ लोगों में प्रकट हुईं तब माँ की अवस्था कठिनाई से १७ या १८ वर्ष की होगी।

विवाह होने के अनन्तर गार्हस्थ जीवन माँ को अपनी परिधि में केन्द्रित न कर सका। जीवन के प्रभात में ही उनके शरीर में दिव्य ज्योति प्रकट होने लगी थी। कीर्तन सुनने से उसकी विशेषतः अभिव्यक्ति होती थी। जीवन के आरम्भ से ही सदैव अन्तर्मुख अवस्था बनी रहती थी।

संवत् १९७४ के माघ महीने के आस-पास भोलानाथजी की अष्टग्राम से बाजितपुर बदली हुई। भोलानाथ उस समय सर्वे विभाग में काम करते थे। उसी समय रायबहादुर योगेशचन्द्र घोषजी के छोटे जामाता श्री भूदेवचन्द्र वसु बाजितपुर के नवाब के स्टेट के असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट होकर आये और १९७८ वि० तक वहां रहे। उन्होंने भोलानाथजी को उक्त स्टेट के मुन्शी के पद पर नियुक्त कर दिया।

भूदेव बाबू की स्त्रीके साथ माँ का अत्यन्त स्नेह था। भूदेव बाबू के लड़की-लड़कों का भी माँ के प्रति अत्यन्त प्रेम था। भूदेव बाबू की स्त्री कहती थी, माँ का ऐसा रूप है कि वे यदि घाट में जाती हैं तो सारा घाट उज्ज्वल हो उठता है। इसीलिए अनेक लोग माँ को राङ्गा दीदी कहते थे।

पहले की तरह उस समय भी कीर्तन में मां की भावावस्था होती थी। एक बार भूदेव बाबू की लड़की की अस्वस्थता के समय कीर्तन किया गया था। मां अस्वस्थ लड़की के समीप बैठी थीं। बाहर कीर्तन हो रहा था। मां ने संकेत से भूदेव बाबू की स्त्री को निकट बुलाकर अपने शरीर की स्थिति बतलाई। भूदेव बाबू की स्त्री ने उनके मुँह पर पानी के छींटे डाले और पङ्खा झला एवं भूदेव बाबू के निकट खबर भेजी। मां ने घर जाना चाहा, हाथ पकड़ कर उन्हें घर पहुँचा दिया गया। भूदेव बाबू ने इस बात को गुप्त रखने को कहा। उन्होंने उक्त अवस्था को हिस्ट्रिया समझा अतएव कीर्तन सुनने से मां का अस्वस्थ होना उन्हें अच्छा नहीं लगा।

बाजितपुर से भूदेव बाबू के चले जाने के अनन्तर ही मां के जीवन का वैशिष्ट्य लोगों के सम्मुख कुछ-कुछ प्रकट होने लगा। पहले जिस अवस्था का उल्लेख हुआ है वह क्रमशः गाढ़तर, गाढ़तम और व्यापक हो उठी। इससे पहले सर्वसाधारण को उसका इतना परिचय न था। वहां मां की जीवन-धारा अत्यन्त ही विचित्र हो उठी। प्रतिदिन नियमितरूप से उनकी साधन क्रिया हो जाती थी। वे दिन में गृहस्थी के सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करतीं। रात्रि के समय, जब

भोलानाथजी विश्राम करते, शयन-गृह के ही एक कोने में जमीन पर बैठी रहतीं। उस समय उनके शरीर में यौगिक, तान्त्रिक, विविध प्रकार की आध्यात्मिक साधनाएँ, जो साधारण दृष्टि से असीम आश्चर्यजनक थीं, विना किसी प्रयत्न के और विना किसी प्रकार की आकांक्षा के अपने आप प्रकट होती थीं। नाना प्रकार के आसन, मुद्राएँ, पूजा आदि अपने आप ही हो जाते थे। उस समय शरीर से एक प्रखर तेज की छटा छिटकती थी, इसलिए मां बहुधा शरीर को कपड़े से ढक कर रखती थीं। उनकी पूजा सर्वसाधारण की पूजा से सर्वथा भिन्न होती थी। उसमें बाह्य सामग्रियां भी कुछ नहीं रहती थीं। एक के पश्चात् दूसरे देवी-देवता अपने शस्त्रास्त्र, वाहन और परिजन आदि के साथ उनके शरीर से प्रकट होते थे और पूजा के पश्चात् उनके शरीर में लीन हो जाते थे। पूजा के समय उन्हें प्रतीत होता था कि वे स्वयं ही देवता है, स्वयं ही पूजक हैं, स्वयं ही पूजोपकरण हैं एवं पूजा से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक वस्तु वे ही हैं। और मन्त्र निरन्तर उनके ओठों से निकलते रहते थे। भोलानाथजी चौकी के ऊपर लेटे रहते थे। वे भी देखते-देखते सो जाते अथवा कभी बैठे-बैठे देखते रहते थे। माँ की ये सब साधनाएँ बैठ कर ही होती थीं। हमारी ज्योतिर्मयी मां पवित्रता की प्रतिमूर्ति हैं। जिस कमरे में ये सब क्रियाएँ होती थीं उस कमरे के बाहर चारों ओर लगभग दो हाथ जगह वे प्रतिदिन साफ़ सुथरी कर रखती थीं। एक तिनके के साथ भी कमरे का संस्पर्श नहीं रहता था हाथ में धूपदानी लेकर चारों ओर घूम आती थीं।

इस समय तक माँ सर्वसाधारण के प्रकाश में नहीं आई थीं। पर देदीप्यमान ज्योति दीर्घकाल तक आवरण के घेरे में बन्द नहीं की जा सकती। माँ की इन सब क्रियाओं का दीवार के छिद्रों से किसी किसी ने अपनी आँखों से प्रत्यक्ष भी किया था, किन्तु उनका वास्तविक तत्त्व जन साधारण की समझ में नहीं आता था। अपनी-अपनी समझ के अनुसार लोग विविध कल्पनाएँ करते थे। कोई इसे भूतलीला कहता, तो कोई वायु-विकार जनित हिस्ट्रिया आदि रोग। अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार उसकी निवृत्ति का उपाय भी लोग भोलानाथजी को बतलाते थे। अच्छे ओझा या चिकित्सक को दिखलाने की सलाह देते थे। भोलानाथजी ने उनकी सलाह मान कर दो एक ओझाओं को भी दिखलाया था, पर वे माँ के अलौकिक तेज के सम्मुख पराभूत हो जगदम्बा को बार-बार प्रणाम कर "यह हमारे वश की बात नहीं; मां साक्षात् देवी भगवती हैं"—कह कर चलते बने थे।

कालीकच्छ के डाक्टर महेन्द्र नन्दीजी ने, जो ऊँची प्रकृति के व्यक्ति हैं, एकबार माँ को देखकर भोलानाथजी से कहा, 'यह बहुत उच्च अवस्था है, रोग नहीं है। आप इसे जिसे तिसे न दिखावें।' तदनन्तर भोलानाथजी ने फिर किसी को नहीं दिखाया।

संवत् १९७९ के वैशाख महीने से ही माँ के भाव में विशेष परिवर्तन आरंम्भ हुआ। तीन मास के उपरान्त अर्थात् १९७९ के श्रावण पूर्णिमा (झूलन पूर्णिमा) को माँ की दीक्षा अपने आप सम्पन्न हो गई। दीक्षा के अनन्तर पांच महीने तक आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि यौगिक क्रियाएँ माँ के शरीर में विशेषरूप से होती रहीं।

आसन आदि का आरंभ तो दीक्षा के पहले से ही हो चुका था किन्तु स्तोत्र मन्त्रादि का आविर्भाव दीक्षा के अनन्तर ही आरंभ हुआ। मन्त्र, स्तोत्रादि के आविर्भाव के पूर्व ॐ ॐ प्रकट हुआ। एक दिन रात्रि में नित्य के समान आसनावस्था में पट होकर भूमि पर साष्टाङ्ग प्रणाम करने की शैली से माँ पड़ी थीं, भोलानाथजी को देखते देखते झपकी आ गई, भोलानाथजी जब जागे तो उन्होंने देखा कि माँ की अँगुलियाँ जप करने के समान चल रही हैं और जप हो रहा है। माँ ने दादी जी को इसी प्रकार जप करते देखा था, उनकी अँगुलियाँ भी उसी प्रकार जप की संख्या का संकलन कर रही थीं।

माँ के ममेरे भाई निशिकान्त भट्टाचार्य इन सब आसन आदि अलौकिक क्रियाओं को अच्छा नहीं समझते थे। उनके प्रति उदासीन रहने के कारण वे भोलानाथजी को जब तब बिगड़ते थे। एक दिन वे भोलानाथजी को इसी पर बिगड़ रहे थे। माँ आसन लगाकर अपने कमरे में बैठी थीं। माँ का भाव अस्वाभाविक था, सिर पर वस्त्र न था, शरीर प्रायः खुला था। माँ खूब समझ रही थीं कि सिर पर वस्त्र नहीं है, शरीर पर भी वस्त्र नहीं है, पर जिससे कपड़ा ठीक किया जाता उस तरह का लज्जा का भाव ही न था। माँ निशिकान्त बाबू की ओर तीव्र दृष्टि से देख कर कह बैठी, 'क्या कहता है रे क्या कहता है ?' वे मारे भय के दो तीन हाथ पीछे हट गये। इसपर माँ ने हँसते हँसते कहा, "डरते क्यों हो।" तदनन्तर उन्होंने पूछा "आप कौन हैं ?" माँ के श्रीमुख से निकला, "पूर्ण ब्रह्म नारायणी।" भोलानाथजी ने भी पूछा, "तुम कौन हो ?" उस समय माँ के मुख से निकला, 'महादेवी।'

इसी समय निशि बाबू ने पूछा, 'आपकी दीक्षा हो चुकी है ?' माँ ने कहा, 'हाँ'। निशि बाबू ने पूछा, "क्या रमणी बाबू की दीक्षा हो गई है ?" माँ ने कहा, 'नहीं'। उन्होंने फिर पूछा, 'कब होगी ?' माँ ने कहा, "पाँच मास के बाद आगामी अगहन १५ सौर अमुक तिथि, अमुक वार, अमुक नक्षत्र में होगी।" सब साफ साफ बतला दिया। जानकी बाबू ने आकर तिथि, नक्षत्र समझे, उन्होंने भी पूछा, "आप कौन हैं ?" माँ के मुँह से निकला, "पूर्ण ब्रह्म नारायण।" बहुत देर तक इस विषय में विविध चर्चाएँ होती रहीं। अन्त में बात उठी कि एक बार माँ हुई नारायणी, एक बार हुईं नारायण और एक बार हुईं महादेवी; इसका क्या कारण ? माँ ने कहा, "आत्मीयों में से किसी का स्त्री भाव है, किसी का भगिनी भाव है, अतः उनके निकट उनके भावानुरूप स्त्रीलिङ्ग शब्द निकला, वास्तव में नारायण शब्द ही समुचित रूप में प्रकट हुआ। और महादेवी शब्द बाहर निकलनेका यही एक कारण है कि जिस समय जिस देवी-देवताकी पूजा की जाती है पूजक को तद्भावापन्न होना पड़ता है। मैं उस समय पूजा में थी, इसलिए ऐसा शब्द मुँह से निकला।"

भोलानाथजो ने बहुत चाहा कि माँ ने जिस दिन का निर्देश किया है उस दिन दीक्षा न हो किन्तु ठीक उसी दिन दीक्षा हो ही गई। उनके प्रयत्न सफल नहीं हुए।

वाजितपुर की काली-पूजा का वृत्तान्त भी उल्लेखयोग्य है। वह भोलानाथजी की पैतृक पूजा थी। वह प्रतिवर्ष नियमित रूप से होती थी और बहुत ही शुद्धता के साथ की जाती थी। चावल मँगाकर छाँट बीन कर शुद्धता के साथ भोग बनाया गया था। भोग किसी

दूसरी स्त्री ने बनाया था। भोग बनाकर थाल में सजाकर रखा था। उधर पूजा हो रही थी। माँ रसोई के कमरे के छोटे दरवाजे के पास बैठ गईं, जिससे कि कोई भीतर न जा सके, एक दिव्यज्योति शुभ्रवस्त्र-धारी पुरुष अपनी प्रभा से सारे रसोई घर को आलोकित करता हुआ माँ के दाहिने अंग से निकला और सजे भोग के थाल में से थोड़ा सा भोग अपने मुंह में डालकर माँ के अंग में ही लीन हो गया। माँ बैठे बैठे स्पष्ट रूप से यह दृश्य देख रही थीं। रसोई बनानेवाली स्त्री रसोई घर में ही लकड़ियों के गट्ठर के सहारे सो गई थी, इसलिए मां के सिवा इस घटना का किसी को पता न चला। भोला-नाथजी भोग लेने आये। वे दो तीन आदमियों की देखरेख में ज्योंही भोग ले जाने लगे कहीं से एक कुत्ता आकर भोग छूकर अदृश्य हो गया। उसे तालाब में छोड़कर फिर जल्दी जल्दी दूसरा भोग तयार कर लगाया गया। माँ से सूचना पाकर जब भोला-नाथजी ने उक्त घटना पुरोहितजी से कही तो वे बोले वही असली भोग है। उसके न मिल सकने के कारण उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

संवत् १९८० के अन्त में भोलानाथ जी की नौकरी छूट गई। वे अत्यन्त चिन्तित हुए। नौकरी की खोज में ढाका आए। माँ भी साथ थी। ढाका में भी इधर उधर पता लगाने पर जब काम का कोई सिलसिला नहीं बैठा तब उन्होंने माँ को घर भेज देने का निश्चय किया। माँ ने उनसे तीन दिन प्रतीक्षा कर देखने को कहा। तीन दिन के भीतर ही शाहबाग में व्यवस्थापक पद पर उनकी नियुक्ति हो गई। शाहबाग विशालतम बाग है। उसीके एक भाग में भोलानाथजी के रहने की व्यवस्था हुई।

जिस समय शाहबाग में आना हुआ उस समय मां की तीन वर्ष व्यापी मौनावस्था चल रही थी। शाहबाग में भी लगभग डेढ़ वर्ष तक मौनावस्था रही। उसके अतिरिक्त आहार आदि के सम्बन्ध में भी समय समय पर नाना प्रकार के नियम चलते थे। यहां तक कि यदि फलाहार करना होता तो भी तीन ग्रास से अधिक मुँह में नहीं डालती थीं। फिर उसके अतिरिक्त जल तक ग्रहण नहीं करती थीं। उसके अनन्तर केवल फलाहार पर रहने का नियम चला। किन्तु उसके लिए किसी प्रकार की व्यवस्था करने का निषेध कर दिया। स्वतः ही जो कुछ जुट जाता उसी पर निर्भर रहती थीं। उस समय माँ के शरीर में निरन्तर यौगिक क्रियाएँ होती थीं।

उस अन्तर्मुखी अवस्था में भी मां गृहस्थी के सभी काम काज करती थीं। उस समय माखन मां का छोटा भाई और भतीजा आशु स्कूल जाते थे। उनके लिए सबेरे रसोई बनानी पड़ती थी। उनको खिला पिला कर स्कूल भेजने के अनन्तर बर्तन मलतीं, तालाब से स्नान कर जल भर लातीं, फिर भोग के लिए रसोई बनाती थीं। उसके बाद भोग लगा कर भोलानाथजी भोजन करते थे। मसाले पीसना, तरकारी सुधारना आदि से लेकर सभी काम अकेले ही करने पड़ते थे। सदैव एक तन्मयता का भाव बना रहता था। मां की अन्तर्मुखता में ये दैनिक कार्य कोई बाधा नहीं डालते थे। भावावस्था में अधिकांश समय मां जमीन पर पड़ी रहती थीं। समाधि की सी अवस्था रहती थी। उसमें न तो समय की गति का भान रहता था और न सांसारिक पदार्थों का ही आभास। उक्त अवस्था के बीतने पर उठ

कर अधूरा काम पूरा करती थीं। उस समय माँ घूँघुट काढ़े रहती थीं। तदनन्तर घेरा डाल कर बोलना आरम्भ होने पर बहुधा सिर पर कपड़ा नहीं रहता था।

दीपावली की कालीपूजा का विवरण भी कम विस्मयावह नहीं है। वह सं० १९८२ के कार्तिक मास में हुई थी। इस पूजा में बलि का इतिहास भी अत्यन्त अद्भुत है। माँ के शाहबाग निवास काल में भक्तमण्डलियाँ मातृ-दर्शनों के लिए चारों ओर से उमड़ पड़ी थीं।

संवत् १९८३ की दीपावली को भी कालीपूजा हुई। इस कालीपूजा का इतिहास भी विस्तृत तथा विस्मयावह है। उस कालीमूर्ति का विसर्जन नहीं हुआ। उस पूजा की यज्ञाग्नि भी सुरक्षित रखा गई। उसी अग्नि में तीन वर्ष व्यापी अखण्ड महायज्ञ* अवसर पर गायत्री मन्त्र द्वारा कोटि आहुतियाँ दी गईं। लगातार तीन वर्ष तक चल कर संवत् २००७ पौष (संक्रांति) को उस महायज्ञ की पूर्णाहुति हुई।

ढाका अवस्थान काल में अनेक भक्तों ने मां के चरणों का आश्रय लिया था, जिनमें कतिपय मुख्यतमों का नीचे उल्लेख किया जा रहा है। ज्योतिषचन्द्र राय आई० एस० ओ०, जो आगे चलकर भाईजी के नाम से प्रसिद्ध हुए, मां के परम भक्त थे; उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन मां के चरणों में अर्पित कर दिया था। अवसरप्राप्त सिविल सर्जन डा० शशाङ्कमोहन मुखर्जी, जो आगे चलकर मां के आदेश से संन्यास ग्रहण कर अखण्डानन्दगिरि के नाम से

---

* इस यज्ञ का विशेष विवरण "अखण्ड महायज्ञ" में देखिये।

परिचित हुए। मां के अनन्य भक्त थे। शशाङ्क बाबू के भ्राता कुञ्जमोहन मुखोपाध्याय, जो अन्त में तुरीयानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, मां के असाधारण भक्त थे। शशाङ्क बाबू की पुत्री, जो सर्वसाधारण में खुकुनी दीदी, दीदी या गुरुप्रिया देवी के नाम से प्रसिद्ध हैं, मां की प्रधान सेविका और परम भक्त हैं। इसी अवसर पर सिद्धेश्वरी तथा रमना के आश्रमों का सूत्रपात हुआ और उनमें विविध मन्दिर, यज्ञशाला और घरों का निर्माण हुआ एवं पूजा-पाठ, भोग-राग आदि की सुव्यवस्था हुई। ढाका, अवस्थान काल में मां ने भारत के प्रायः सभी तीर्थ स्थान, पीठ स्थानों में भ्रमण किया। वैद्यनाथ में स्वामी बालानन्दजी से भेंट हुई। वे मां के दर्शन कर अत्यन्त आनन्दित हुए। १९८३ फाल्गुन में महाकुम्भ के दर्शनों के लिए हरिद्वार गईं। वहां से मथुरा, वृन्दावन होती हुई ढाका लौट गईं। विन्ध्याचल में अष्टभुजा के निकट अपने को सर्प से डंसाकर कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी के पञ्चम पुत्र मनु की सर्पदंश से रक्षा की। ज्योतिषचन्द्रराय की रुग्णावस्था में उनके निकट चुनार जाकर उनके जीवन की रक्षा की। अपने पितृ-गृह विद्याकूट और खेउड़ा जाकर अपनी जन्मभूमि के दर्शन किये। श्री कामाख्या की यात्रा के सिलसिले में दार्जिलिङ्ग, फिरोजपुर, राजशाही भी गईं। इसी बीच प्रमथ बाबू और उनके चपरासी को अलौकिक दिव्य दर्शन दिये। कुञ्जबाबू के आह्वान पर काशी पधारीं। उस अवसर पर निमन्त्रित विशिष्ट व्यक्तियों में बनारस गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल प्राच्यप्रतीच्य सब विद्याओं के अगाध विद्वान् महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर श्रीगोपीनाथ कविराजजी को पहले

पहल मां के दर्शन प्राप्त हुए। वे मां की बातें सुनकर वे मुग्ध हुए। उन्होंने मां की बातें और भक्तमण्डली द्वारा किये गये प्रश्नों के हृदयस्पर्शी उत्तर सुनकर केवल इतना ही कहा कि मैंने जो देखा वह मेरे पहले देखे हुए प्राकृताप्राकृत सब दर्शनों से कई गुना अधिक बढ़ा चढ़ा है। मुझे यह जाग्रत् में परिगत एक उज्ज्वलतम स्वप्न प्रतीत हो रहा है। तभी से कविराजजी मां के अत्यन्त भक्त हो गये हैं। आदिनाथ चन्द्रनाथ, पुरी, नवद्वीप, काक्स बाजार, जमशेदपुर, तारापीठ, वक्रेश्वर, आगरा, कलकत्ता, अयोध्या, दक्षिण भारत के विविध तीर्थों, मन्दिरों, द्वारका आदि स्थानों में भी मां गईं। सर्वत्र सभी प्रकार के लोगों को मां के दर्शनों से आनन्द प्राप्त हुआ। इसी अवसर पर रामठाकुर महाशय, माधवी मां, साधन समर आश्रम के अतुल ठाकुर आदि अनेक सन्तों से भेट हुई, उन्होंने मां के प्रति अत्यधिक समादर अभिव्यक्त किया। ढाका में भक्तों ने मां की अनेक जन्म तिथियां मनाई। वहीं से पहले पहल जन्मोत्सव मनाना आरंभ हुआ।

भोलानाथजी लौकिक दृष्टि से मां के पति थे, पर वास्तव में उनका भी मां के प्रति पूर्ण मातृभाव था। वे मां की पूजा करते, साष्टाङ्ग प्रणाम करते थे ; मां, के प्रधानतम भक्त और शिष्य थे। यथार्थतः वे मां के आध्यात्मिक पुत्र थे। संवत् १९८९ में माँ ने भोलानाथजी तथा भाईजी के साथ ढाका का परित्याग किया। वे कुछ समय तक देहरादून के निकट रायपुर नामक प्रशान्त गांव में एक जीर्ण शिव-मंदिर में रहीं। रामपुर में मां का अतीव निर्भीक जीवन व्यतीत हुआ।

एकान्त मन्दिर में विविध विषैले जीवों से रक्षा की कोई व्यवस्था न थी। ६।७ महीने वहां रहने के अनन्तर तारापीठ के लिए प्रस्थान हुआ। वहां से नलहाटी गईं। नलहाटी में भक्तों के साथ कुछ दिन निवास किया। १९८९ के माघ में पुनः रायपुर चलीं गईं। इस बीच में देहरादून, मसूरी, उत्तरकाशी, लक्ष्मणझूला, ऋषिकेश, हरद्वार आदि विविध स्थानों में रही। देहरादून में विशेषतः आनन्दचक और मनोहर मन्दिर में मां का निवास होता था। मनोहर मन्दिर के निकट मां के स्मृति-मन्दिर की स्थापना हुई। उस अवसर पर कमला नेहरू प्रभृति अनेक मातृभक्त महिलाएँ मां के चरणों में उपस्थित हुईं।

१९९० के चैत्र में मां सोलन गईं। वहां के राजा साहब दुर्गासिंह मां के अनन्य भक्त हैं। वे प्राचीनकाल के राजर्षियों के सदृश अत्यन्त उज्ज्वलचरित और अपूर्व साधुसेवी पुरुष हैं। उनका शास्त्रों तथा सत्पुरुषों के प्रति समादर का भाव आदर्श और अनुकरणीय है। १९९२ में उत्तरकाशी नवनिर्मित मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई। उसमें अनेक भक्तों ने भाग लिया। १९९२ विन्ध्याचल यज्ञशाला की और १९९३ में किशनपुर आश्रम की प्रतिष्ठा बड़े आनन्द और उत्साह से सम्पन्न हुई। संवत् १९९४ में कैलासयात्रा सम्पन्न हुई। वहां से लौटते समय मार्ग में भाई जी का देहावसान हो गया। उनका एक विद्यापीठ स्थापना का संकल्प था। इसी उद्देश्य से उन्होंने किशनपुर आश्रम की स्थापना की थी, किन्तु उनके जीवन काल में वहां पठन-पाठन की व्यवस्था न हो सकी। उनके उक्त

संकल्प की पूर्ति संवत् १९९८ में राजर्षिचरित सोलन के राजा साहब दुर्गासिंह की उपस्थिति में हुई। आरम्भ से वे ही उसका सारा व्यय-भार वहन करते रहे हैं।

मां के नाम से सम्बद्ध अनेक आश्रमों में काशी का आश्रम प्रमुख है। संभवतः सं० २००० के पूर्वार्द्ध में उसके लिए गङ्गाजी के तटपर भूमि खरीदी गई थी। गङ्गाजी की सन्निधि तथा पुण्यक्षेत्र काशी में स्थिति के कारण तो उसका वैशिष्ट्य है ही। उसके अतिरिक्त वह महापुरुषों का लीलास्थल रहा, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि उस भूमि की रजिस्ट्री के दिन मां अल्मोड़ा थीं। वहीं से उन्हें उस भूमि पर चिन्मयरूपधारी महापुरुष नृत्य करते दिखाई दिये थे। तीन वर्ष-व्यापी गायत्री मन्त्र द्वारा कोटि आहुतिरूप अखण्ड महायज्ञ भी उसी में सम्पन्न हुआ।

मां किसी एक स्थान में अधिक नहीं रहतीं। उनके पर्यटन से लोगों का कल्याण होता रहता है। वे गृहस्थों के घरों में निवास नहीं करतीं, धर्मशाला या मन्दिर में रहना उन्हें प्रिय है, जहां प्रत्येक व्यक्ति उनके समीप पहुँच सके और बिना किसी प्रकार के संकोच के उन्हें अपनी मां और अपने को उनकी सन्तान समझ सके। वे स्वयं अपने हाथ से भोजन नहीं करती हैं। दूसरों को उन्हें खिलाना पड़ता है। इसपर एक बार प्रसंगतः मां ने कहा था, "मैं देखती हूँ कि सब हाथ मेरे ही हैं। मैं अपना भोजन अपने हाथ से ही ग्रहण करती हूँ।" मां की संनिधि में भक्तमण्डली मां की नानाविध शारीरिक अवस्थाओं का अनुभव

करती है। किन्तु मां अपने सम्बन्ध में कहती हैं कि यह शरीर निरन्तर एक ही अवस्था में रहता है। इसमें किसो प्रकार का परिवर्तन नहीं होता, किन्तु तुम्हें जो साधारण या असाधारण परिवर्तनों की प्रतीति होती है वह केवल तुम्हारे भाव की कल्पना है। यह शरीर एक प्रकार का बाजा है, जैसा तुम इसको बजाओगे ठीक वैसा ही इससे शब्द निकलेगा। सचमुच मां विश्वमाता हैं। उनके सम्पर्क में आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति उन्हें हृदय से मां मानता और कहता है। और मां अपने को सबकी बच्ची समझती हैं। दिव्य भाव से ओत-प्रोत यह बाल सुलभ स्वभाव ही मां से निरन्तर झरने की तरह झर झर बह रहे दिव्य माधुर्य और प्रकाश की सृष्टि करता है।

यह पहले ही दर्शाया जा चुका है कि मां की लौकिक शिक्षा कुछ भी नहीं हुई थी। फिर भी प्रत्येक आलोचनीय विषय का, जो उनके सामने उपस्थित किया जाता है, मां अत्यन्त निपुणता के साथ समाधान करती हैं। अत्यन्त गंभीर और अत्यन्त जटिल धार्मिक तथा आध्यात्मिक प्रश्नों पर सहज सरल भाषा में अति उत्तम रीति से प्रकाश डालती हैं। संवत् १९८६ में भारतीय फिलोसोफिकल कांग्रेस का अधिवेशन ढाका में हुआ था। उसमें देश विदेश के ऊँचे से ऊँचे दार्शनिकों ने भाग लिया था। निमन्त्रित दार्शनिक मां से मिलने गये थे। इस भेंट के सम्बन्ध में एक दार्शनिक ने अपने वक्तव्य में कहा था, विचार विमर्श लगातार तीन घण्टे तक चला। विविध प्रकार के प्रश्न किये गये थे, आध्यात्मिक प्रश्नों की मात्रा प्रचुर थी। मां आनन्दमयी ने उनका तुरन्त ही सटीक उत्तर दिया। उत्तर देते समय

उनमें न तो किसी प्रकार की हिचकिचाहट रही, न तनिक सतर्कतापूर्वक विचार करती हुईं ही वे दिखाई दीं और न कुछ अधीरता के चिह्न ही उनमें दृष्टिगोचर हुए। उनके उत्तर आध्यात्मिक परिभाषाओं के बिना सीधे लक्ष्य पर पहुँचते थे। सम्पूर्ण मण्डली उनकी तीक्ष्ण बुद्धि, अद्भुत प्रत्युत्पन्नमति और वक्तृत्वशैली से बहुत प्रसन्न हुई।

माँ के सम्पर्क में सभी प्रकार के लोग आते हैं और सभी कोई न कोई अभिनव प्रकाश पाते हैं। कई शिक्षा विशारदों को भी मां से नये प्रकाशों की प्राप्ति हुई है। उनमें से एक ने कहा था, मां आनन्दमयी के सन्मुख हमारी विचारशक्ति और बुद्धिमत्ता कुण्ठित और व्याकुल होकर हमारा साथ छोड़ देती है। उनकी उपस्थिति में हमारी अपनी स्थिति ठीक वैसी ही हो जाती है जैसी कि गगनचुम्बी ऊँचे से ऊँचे हिममण्डित शिखरों से विभूषित असीम हिमालय की तलहटी पर खड़े हुए पुरुष की होती है।

मां सब के साथ अपना अभेद मानती हैं; सर्वात्मभाव उनका स्वाभाविक है। वे ऊँच-नीच में, धनी निर्धन में, विशिष्ट और साधारण जनता में कोई अन्तर नहीं देखतीं। जब एक बार एक भक्त ने कहा, "मां अपने खजाने की पिटारी हमारे लिए खोलो।" मां ने उसके उत्तर में कहा, "वह सदा सबके लिए खुली है।"

अचित्यानन्तचरिता माता नो मङ्गलालया।
अज्ञानचक्षुषा द्रष्टुं नैव शक्या यथार्थतः ॥

यह कह कर मैं विरत होता हूँ।

श्री श्री माँ के मुख से विनिर्गत देवभाषामय सूक्त।

ढाका अवस्थानकाल में नाना प्रकार की वाणियां माँ के श्रीमुख से स्वतः निकलती थीं। उनका उच्चारण इतना स्पष्ट और मधुर होता था कि जिन्होंने सुना है वे ही उसकी स्पष्टता और मधुरता का अनुभव कर सकेंगे। गूंगे के गुड़ की भांति वह वर्णनातीत है। तीन तीन चार चार संयुक्त व्यञ्जनों का भी ऐसा अत्यन्त स्पष्ट उच्चारण होता था जैसा कि मनुष्य से लौकिक अवस्था में कदापि हो ही नहीं सकता। वास्तव में दैवी भाषा वही है। मातृमुख विनिर्गत देवभाषामय सूक्त-लौकिक भाषा की अभिज्ञता से उसे समझना कदापि सम्भव नहीं है। अनेक बार वे वाणियां प्रकट हुईं, उन्हें कोई न तो समझ ही सका और न स्मृति में धारण ही कर सका। एक बार दो-तीन व्यक्तियों ने मिल कर उन्हें लिखने का प्रयत्न किया, किन्तु पूर्ण न लिख सके बीच-बीच में छोड़ कर थोड़ा-बहुत लिख पाये। ऐसी एक वाणी नीचे उद्धृत की जा रही है :—

एहि भावनायं भायम् एहि यं सं तानि तायम्
भावमयं भव भवभय हरणं हे।
यस्मिंस्त्वहं भाग पौं हं वां क्रीं श्रां हे
भां हां हीं हौं हं हीं वं लं यं सं त्वम्
तादरौ भाग सं वं लं हे देव मक्तमयं मम हे।
स त्वं हि हं यं वं वायं कं भावभक्ति...भावमयं हे।
महात्मायं भवभयं हर हे

दैवतं मयं मे सं तं ह्रीं मत्तस्त्वं भवोऽयम्
यस्तानि त्वं तारणमयं भवभयनाशं भावय हे
स्वभावशरणगतं प्रणवजासनम्
भवानी भवं भवभय नाशनं हे
हरशरणागतं......तायं
विभावतः ममायनं हे ।
यस्तारणं तत्र द्वयरूपं मया हि सर्वाणि स्वरूप मयानि
मया हि सर्वं मया हि सर्वशरणं हे ।
दास नित्यं...प्रणवश्रुतकारणम्
महामाया महाभाव मय मय हे ।
मम भो भक्तौ तरणं मा मम सर्वमयं हे
यस्यारुद्ररुद्रत्वं प्रणवे रां ॠं कृतकारणं रुद्रं नौमि
प्रां वां हां सां श्रां हिं श्रं
भावभयं हे......संसृष्टेः केशवः ॥

श्री श्री आनन्दमयी संघ

समस्त मातृभक्तों को एक परिवार के सदस्यों की नाईं एक सूत्र में आवद्ध कर श्री माँ की सन्निधि में प्राप्त हुए आध्यात्मिक सदुपदेशों द्वारा निरन्तर आध्यात्मिक समुन्नति की ओर स्वयं अग्रसर होना तथा औरों को अग्रसर होने में सहायता प्रदान करना।

देश तथा विदेशों में अज्ञानान्धकार विमूढ़ लोगों को माँ का परिचय प्रदान कर दुःखशोकविनाशक तथा सुखशान्तिप्रदायक माँ के सन्निधान, सदुपदेश तथा अमर-वाणियों द्वारा उनके अज्ञानान्धकार और तज्जनित विविध क्लेशों को निवृत्त करने की चेष्टा करना।

श्री श्री माँ आनन्दमयी के नाम से सम्बद्ध देश भर में बिखरी हुई सर्वविध (चल तथा अचल) सम्पत्तियों की देख रेख करना, सुव्यवस्था करना तथा संवर्द्धन और संरक्षण करना*।

प्रधानतया उपर्युक्त सदुद्देश्यों की सिद्धि के हेतु कतिपय मातृभक्तों के सत्प्रयत्नों से, लगभग चार वर्ष हुए, श्री श्री आनन्दमयी संघ की स्थापना हुई जिसकी सूचना संघ की स्थापना के हेतुओं का उल्लेख करते हुए समस्त मातृभक्त भाई बहिनों के समीप पहले ही भेजी जा चुकी है।

---

* मां के नामसे सम्बद्ध आश्रम—अल्मोड़ा, कलकत्ता, काशी, ढाका, देहरादून, नर्मदातट, पुरी, विन्ध्याचल और वृन्दावन में हैं।

इस स्वल्प अवधिमें संघ ने जो अभूतपूर्व उन्नति की है वह सब पर विदित है। संघ के ही सत्प्रयत्नों से सहस्रों मातृभक्तों को मातृत्व के बन्धन में आवद्ध होकर अनेकों वार सामूहिक रूप से मां के आशीर्वाद और साक्षात्कार के साथ साथ सत्सग और सदुपदेशों से लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। संघसप्ताह, आनन्द-वार्ता द्वारा अनेकों को अभिनव स्फूर्तियां और अनुभूतियाँ प्राप्त हो रही हैं। यदि हमारे भाई वहनों का सहयोग संघ को निरन्तर मिलता रहा तो यह उत्साह के साथ और भी अधिक उन्नति करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

समस्त मातृभक्तों के प्रति हमारा सानुरोध निवेदन है कि जिस संस्था का मां के सन्निधान में उदय हुआ है, जिसे निरन्तर मां का आश्रय और आशीर्वाद प्राप्त है उसके विपन्न या पथभ्रष्ट होने की मानवसुलभ सर्वविध कल्पनाओं का परित्याग कर आप इसे सतत सहयोग प्रदान करें जिससे इसके उद्देश्य किसी देशविशेष या समाजविशेष में केन्द्रित न हो सार्वभौमता लाभ कर मानवजातिमात्र का मङ्गल कर सकें।
